International Journal of Sanskrit Research 2017; 3(2): 73-75

International Journal of Sanskrit Research

अनन्ता

ISSN: 2394-7519
IJSR 2017; 3(2): 73-75
© 2017 IJSR
www.anantaajournal.com
Received: 17-01-2017
Accepted: 18-02-2017

डा. विजय गर्ग
सहायक आचार्य हिन्दू महाविद्यालय
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली, भारत

Correspondence
डा. विजय गर्ग
सहायक आचार्य हिन्दू महाविद्यालय
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली, भारत

क्षेमेन्द्र का अलंकारौचित्य और तिलकमञ्जरी

डा. विजय गर्ग

प्रस्तावना

उचित के भाव को औचित्य कहते हैं - उचितस्य भावः औचित्यम् अर्थात जो जिसके अनुरूप होता है, उसका उसी के साथ सम्बन्ध होता है। औचित्य शब्द 'उचित' शब्द से 'ष्यञ्' प्रत्यय लगाकर निष्पन्न होता है। 'उचित' पद में दिवादिगण की समवायार्थक 'उच्' धातु हैं, इससे 'क्त' प्रत्यय करने पर 'उचित' शब्द बनता है। उचित शब्द का अर्थ है - योग्य, उपर्युक्त, ठीक, प्रचलित, अभ्यस्त। इस प्रकार औचित्य का अर्थ हुआ-अनुकूलता, अनुरूपता, उपयुक्तता, योग्यता तथा युक्तता। इस दृश्यमान जगत् में सभी कुछ उपयुक्त और औचित्य से पूर्ण है। ब्रह्मा ने केवल मानव की रचना की। मानव ने अपने आस-पास के परिवेश को देखकर वस्तुओं को जानकर व उनकी उपयुक्तता को समझकर अपने सुख साधनों का विकास कर लिया।

आचार्य क्षेमेन्द्र ने औचित्य का लक्षण किया है-

उचितं प्राहुराचार्यः सदृशं किल यस्य यत् ।
उचितस्य च यो भावस्तदौचित्यं प्रचक्षते ।। औ. वि. च., का. 7

जो जिसके सदृश हो, वही उसके लिए उचित है। इसी उचित के भाव को औचित्य कहते हैं। वर्ण्य विषय के अनुकूल अलंकार योजना ही अलंकारौचित्य कहलाती है। अलंकारौचित्य की परिभाषा देते हुए आचार्य क्षेमेन्द्र कहते हैं अर्थानुकूल अलंकार से कवि की उक्ति उसी प्रकार सुशोभित होती है, जिस प्रकार उन्नत पयोधरों पर लटकते हार से कोई मृगनयनी सुशोभित होती है-

अर्थौचित्यवता सूक्तिरलंकारेण शोभते ।
पीनस्तनस्थितेनेव हारेण हरिणेक्षणा ।। औ. वि. च., का. 15

आचार्य आनन्दवर्धन भी इसी तथ्य को समर्थन करते हुए कहते हैं-जिस अलंकार की रचना रस से आक्षिप्त रूप में बिना किसी अन्य प्रयत्न के हो सके, वहीं अलंकार मान्य है-

रसाक्षिप्ततया यस्य बन्धः शक्यक्रियो भवेत् ।
अपृथग्यत्ननिर्वर्त्य सोऽलंकारो ध्वनौ मतः ।। ध्वन्या., 2/16

महाकवि धनपाल की तिलकमञ्जरी में प्रयुक्त अलंकार औचित्योपेत हैं। तिलकमञ्जरी में लगभग सभी प्रमुख अलंकारों का प्रयोग पदे-पदे परिलक्षित होता है। औचित्यपूर्ण अलंकारों से उत्पन्न चमत्कार को देखिए -

अखण्डदण्डकारण्यभाजः प्रचुरवर्णकात् ।
व्याघ्रादिवभयाघ्रातो गद्याद्व्यावर्तते जनः ।। तिलकमञ्जरी, भूमिका, पद्य 15

अतिदीर्घ समासों से युक्त तथा अधिक वर्णनों वाले गद्य से डरकर लोग उसी प्रकार विरक्त होते हुए हैं, जिस प्रकार खण्ड रहित अटवी विशेष में रहने वाले लोग, अनेक रंगों वाले व्याघ्र से। यहाँ पर प्रचुर वर्णनों तथा समास बहुल गद्य की उपमा व्याघ्र से दी गई है। जिस प्रकार लोग अनेक वर्ण वाले व्याघ्र से डरते हैं, उसी प्रकार दीर्घ समास युक्त रचना से लोग भयभीत हो जाते हैं। यहाँ पर श्लेष अलंकार से युक्त उपमा अलंकार की छटा दर्शनीय है, अतः यहाँ पर अलंकारौचित्य है। उपमा अलंकार का एक और उदाहरण द्रष्टव्य है –

शुष्कशिखरिणि कल्पशाखीव, निधिरधनग्राम इव, कमलखण्ड इव मारवेऽध्वनि भवभीमारण्ये इह वीक्षितोऽसि मुनिनाथ। तिलकमञ्जरी, पृ. 218

हे मुनिश्रेष्ठ ! इस संसार रूपी भीषण वन में शुष्क पर्वत पर कल्पवृक्ष के समान, निर्धन ग्राम के धनकोश के समान, मरुस्थल के मार्ग में कमलवन के समान आप दिखते हैं।
यहाँ पर मुनि के लिए ग्रहण किए गये अनेक उपमानों की माला द्रष्टव्य है। मुनिजन सर्वदा लोंगों को संसार रूपी दुःख सागर को सरलता से पार करने के उपाय बताते हैं। मुनिजनों के सामीप्य से दुःखी लोगों का चित्त शान्त हो जाता है। इसीलिए यहाँ पर मुनि को कल्पवृक्ष, धनकोश तथा कमलवन के समान बताया गया है अतः यहाँ पर अलंकारौचित्य है। रूपक अलंकार का एक उदाहरण प्रस्तुत है–

सत्यं वृहत्कथाम्भोधेर्बिन्दुमादाय संस्कृता ।
तेनेतरकथाः कन्थाः प्रतिभान्ति तदग्रतः ।। तिलकमञ्जरी, भूमिका, पद्य 21

कवियों द्वारा निबद्ध कथाएँ अवश्य ही वृहत्कथा रूपी समुद्र (अनेक कथानक रूप रत्नों के होने के कारण) से बिन्दु (कथानक) लेकर रची गई हैं क्योंकि वृहत् कथा के समक्ष अन्य कथाएं लबादारूप (अनेक जीर्ण वस्त्रों से युक्त आवरण विशेष) प्रतीत होती है।
यहाँ वृहत्कथा पर समुद्र, बिन्दु पर कथानक तथा कथाओं पर लबादे का आरोप किया गया है, अतः यहाँ रूपकलंकार है। (वृहत्कथा को समुद्र कहा गया है। जिस प्रकार समुद्र मोतियों व रत्नों का भण्डार है। उसी प्रकार वृहत् कथा से लिया गया है। अतः वृहत् कथा की उत्कृष्टता प्रकट करना औचित्यपूर्ण है)। धनपाल को परिसंख्या तथा विरोधाभास अलंकार अत्यधिक प्रिय थे। परिसंख्या अलंकार का उदाहरण प्रस्तुत है –

यस्यां च वीथीगृहाणां राजपथातिक्रमः, दोलाक्रक्रीडासु दिगन्तरयात्रा, कुमुदखण्डानां राज्ञा सर्वस्वपहरणम्, अनंमार्गणानां मर्मघट्टनव्यसनम्, वैष्णवानां कृष्णवर्त्मनि प्रवेशः .. तिलकमञ्जरी, पृ.12

जिस नगरी में आपण तथा घर राजमार्ग के दोनों और होने के कारण उनका ही राजमार्गोल्लंघन था न कि लोग शासन पद्धति की अवहेलना करते थे, दोला क्रीड़ाओं (झूलों) में ही एक दिशा से अन्य दिशा में गमन होता था, न कि राजदण्ड के कारण किसी का दिङ्निष्कासन होता था, चन्द्रमा के द्वारा ही कुमुदखण्डों की निद्रा का हरण होता था, न कि राजा के द्वारा दण्ड रूप में किसी के धन का हरण किया जाता था, कामदेव की वाणों की ही हृदय भेदन में आसक्ति था, न कि किसी का विद्वेष वश मर्म छेदन किया जाता था। विष्णु भक्तों का ही विष्णूपदिष्ट आचार पद्धति का प्रवेश होता था, न कि किसी का अपवित्र मार्ग में प्रवेश होता था।
यहाँ पर परिसंख्या अलंकार के प्रयोग से अयोध्या नगरी की उत्कृष्टता तथा वहाँ के निवासियों की सच्चरित्रता व्यञ्जित हो रही है। अतः यहाँ पर परिसंख्यालंकारौचित्य है।
विरोधाभास अलंकार धनपाल को बहुत प्रिय है। प्रत्येक वर्णन में कहीं न कहीं विरोधाभास अलंकार का प्रयोग प्राप्त हो जाता है। अदृष्टपार सरोवर के वर्णन में विरोधाभास अलंकार की सहज छटा दर्शनीय है–

मदुरुतरुचितमपि नमदुरुतरुचितम्, बकैरवभासितमपि नवकैरवभासितम् विषैकसदनमप्यमृतमयम् ...अदृष्पाराभिधानं सरो दृष्टवान्। तिलकमञ्जरी, पृ. 205

जल पक्षियों के शब्द से मनोहर होने पर भी जल पक्षियों के रव से मनोहर नहीं था (विरोध परिहार हेतु–फल सम्पदा से झुके हुए विशाल वृक्षों से व्याप्त था), बगुलों से सुशोभित होने पर भी बगुलों से सुशोभित नहीं था। (विरोध परिहार हेतु–नवीन कुमुदों से सुशोभित था) विष का एक निवास स्थान होने पर भी अमृतमय था। (विरोध परिहार हेतु– कमलों के तन्तुओं और मृणलों–जड़ों का एक सदन होने के कारण अमृत समान स्वादिष्ट जल वाला था, ऐसे अदृष्टपार नामक सरोवर को देखा)। यहाँ पर प्रस्तुत अदृष्टपार सरोवर के स्वाभाविक वर्णन में विरोधाभासी वर्णन ने अपूर्व चमत्कार उत्पन्न किया है, अतः यहाँ पर विरोधाभास अलंकारौचित्य है।
आदि जिन की आराधना मे भी विरोधाभास की रमणीयता द्रष्टव्य है–

प्रणतसुरमुकुटकोटिचुम्बितचरणपरागमपरागं
तृणवदुज्झितान्तरायमनन्तरायं त्रिभुवनभवनदीपमभवन– दीपं संसारजीर्णारण्यैकपारिजातमपारिजातं सकलभव्यलोकनयनाभिनन्दनं नाभिनन्दनम् ...। तिलकमञ्जरी, पृ. 218

समरकेतु ने ऐसे ऋषभदेव की अर्चना की जो प्रणामार्थ आए हुए देवताओं के करोड़ों मस्तकालंकरणों के स्पर्श से पराग (धूली) युक्त होते हुए भी, पराग रहित थे विरोध परिहार–राग (विषयादि अभिलाषा) रहित थे, अप्रमित धन को तिनके के समान त्याग देने पर भी अनन्त धन युक्त थे। विरोध परिहार–विघ्न जनक कार्यों से रहित थे, तीनों लोकों के ज्ञानालोकजनक होते हुए भी ज्ञानदीपभिन्न थे, विरोधपरिहार–मोक्षरूप सुख के सागर थे। संसाररूप प्राचीन वन के अद्वितीय पारिजात नामक देववृक्ष होते हुए भी पारिजात भिन्न थे विरोध परिहार–आभ्यन्तर बाह्य शत्रुओं से रहित थे, मोक्ष प्राप्त करने योग्य

सभी लोगों के नेत्रों को आनन्दित करने वाले होते हुए भी आनन्दरहित थे। विरोध परिहार-नाभि नामक सुकुल के पुत्र थे अर्थात् ऋषभदेव थे। यहाँ आदिजिन की स्तुति में विरोधाभास से अवरोध उत्पन्न होने पर अर्थान्वय होते ही सहृदय-हृदय में अपूर्व आनन्दानुभूति की लहर प्रवाहित होने लगती है और काव्य में विरोधाभासालंकारौचित्य का आधान होता है।

अलंकारों के औचित्यपूर्ण सन्निवेश से तिलकमंजरी का काव्य सौन्दर्य द्विगुणित हो गया है। रससिद्ध धनपाल अंलकारों का यथोचित प्रयोग कर काव्य के आत्म-तत्व के सौन्दर्य को और अधिक बढ़ाते हैं।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. तिलकमञ्जरी – (सं.) भवदत्तशास्त्रि एवं पाण्डुरंग परब, चौखम्बा भारती अकादमी, वाराणसी, 1988

– (सं.) एन. एम. कन्सारा, लालभाई दलपतभाई भारतीय संस्कृति विद्यामन्दिर, अहमदाबाद, 1991

2. औचित्यविचारचर्चा – क्षेमेन्द्र (व्या.) श्रीनारायणमिश्र, चौखम्बा ओरियन्टालिया, वाराणसी, 1982

3. काव्यालंकार – भामह (व्या.) रमण कुमार शर्मा, विद्यानिधि प्रकाशन, दिल्ली, 1994

4. ध्वन्यालोक – आनन्दवर्धन, (व्या) आ. जगन्नाथ पाठक, चौखम्बा विधाभवन, वाराणसी, 2000